

हेतुकर झा: अकादमिक प्रतिबद्धता की प्रतिमूर्ति

सामाजिक विमर्श
1(1) 114–115
© 2018 CSD and
SAGE Publications
sagepub.in/home.nav
DOI: 10.1177/2581654318798073
http://smv.sagepub.in



समाजशास्त्र की उपादेयता को देखते हुए भारतीय समाज में इसके प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का अकादमिक जगत में जब मूल्यांकन होगा तो प्रोफेसर हेतुकर झा (5 March 1944–19 August 2017) इसमें अग्रणी भूमिका निभाते नज़र आएँगे। प्रोफेसर झा बिहार के मधुबनी ज़िला के सरिसब ग्राम में जन्मे और पटना विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के प्राध्यापक रहे। उनके बारे में यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारत के ग्रामीण परिवेश के प्रमुख अवयव, जैसे जल स्रोत, स्थानीय/देशी शिक्षा, विशाल लोक संसार, वन और पर्यावरण, जाति व्यवस्था और पंचायती राज पर जब भी चिंतनशील समाज विद्वानों की महत्त्वपूर्ण दखल को समझने की कोशिश करेगा तो उनके शोध और उनकी रचनाएँ उसका मार्गदर्शन करेंगी। जहाँ तक उनके निजी परिवेश का प्रश्न है, वह स्वयं एक ज़मींदार परिवार से ताल्लुक रखते थे। पर मिथिला के भीतर आम और ख़ास के विरोधाभास (mass-elite paradox) पर उनकी समझ स्पष्ट रूप से विभेद की अकादमिक पड़ताल करती है, और कहीं से उनकी अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि उस पर हावी नहीं होती। वहीं लोक और 'फ़ोक' के सूक्ष्म विभेद की समीक्षा और भारतीय संदर्भ में उसकी ज़मीन को उन्होंने बहुत कुशलता से सामने रखा। वह मानते थे कि समाज की सही तस्वीर 'फ़्रील्ड व्यू' और 'टेक्स्ट व्यू' के समावेश से ही संभव है। समाज के इतिहास और इतिहास की सामाजिक पृष्ठभूमि को रेखांकित करते हुए वे शास्त्रों द्वारा समाज के भीतर खींची गई विभाजक रेखाओं को मिटाने के हिमायती थे ताकि समाज की समग्र तस्वीर उभर कर सामने आ सके।

यह समझ उन्हें बर्नार्ड एस. कोह्ल जैसे समाजशास्त्रियों की श्रेणी में शामिल कर देती है। उनकी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ सोशियोलॉजी' इसका प्रमाण है। ज्ञान परंपरा में दर्शन विमर्श को लेकर उनकी समझ कितनी विशद थी इसका प्रमाण सांख्य दर्शन को समाजशास्त्र में एक पद्धति के रूप में उनके प्रयोग से देखा जा सकता है। विद्यापति पर उनका अध्ययन भारतीय संदर्भ में जहाँ धर्म और पुरुषार्थ के नए समीकरण को सामने लाता है वहीं भारतीय गाँवों के संदर्भ में पंचायती राज के नुक़सान पर उनकी विवेचना एकदम साफ़ है।

अकादमिक पड़ताल से इतर उनकी यह बहुत गहरी समझ थी कि गाँव, ज्ञान के छोटे पर, प्रभावशाली केंद्र बनकर उभरने की क्षमता रखते हैं। अपनी इसी समझ के तहत वह मिथिला के दस्तावेजों के प्रकाशन के साथ-साथ कल्याणी फाउंडेशन के अध्यक्ष के तौर पर दरभंगा के आसपास के ग्रामीणों के लिए हर वर्ष व्याख्यानों की श्रृंखला आयोजित करते थे। उनका इस तरह से अकस्मात चले जाना न सिर्फ़ अकादमिक जगत के लिए एक बहुत बड़ा आघात है बल्कि उनसे जुड़े ग्रामीणों और शोधकर्ताओं के लिए एक गहरा झटका है। वे मौलिक सोच और व्यवहार रखनेवाले अपने क्रिस्म के एक अलहदा समाजशास्त्री थे जो अपनी विधा के प्रमेयों को समाज के बीच ले जाकर सिद्धांत रचता हो।

हेतुकर झा के बारे में कुछ बातें गौरतलब हैं। उदाहरण के लिये, उनकी अकादमिक ईमानदारी निसन्देह उच्चतम थी। प्रकरण उनके अपने गुरु राधाकुमुद मुखर्जी के शताब्दी वर्ष पर उनके व्याख्यान का है। सत्तर वर्ष की आयु में खराब स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने लगातार तीन महीने चार-पाँच घंटे हर दिन इस व्याख्यान की तैयारी की जबकि चाहते तो विद्वता के इस पड़ाव पर आराम से इस तरह का एक व्याख्यान निपटा सकते थे। किसी भी व्याख्यान के लिए बुलाने पर उनकी दो शर्तें होती थीं, पहली यह कि मंच पर कोई राजनेता नहीं होगा और दूसरी कि उन्हें विषय की तैयारी के लिए पर्याप्त समय मिलना चाहिए, क्योंकि व्याख्यानों में निर्दिष्ट विषय पर आम बातें करके चले जाना उनकी आदत नहीं थी।

हमारे गाँवों के सामाजिक गठन और उसके ताने-बाने में जाति व्यवस्था की भूमिका को वे गौण मानते थे। उनका मानना है कि औपनिवेशिक शासन के दौरान उपजे तनाव और समझ के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान जाति विमर्श नारेबाजी ज्यादा है। इसमें ऐतिहासिक प्रक्रिया की समझ की गुंजाइश कम है। प्रोफेसर झा गाँव को एक आर्थिक-सामाजिक इकाई के तौर पर देखते थे। इस अवधारणा में हम जाति और स्त्री विमर्श के लिए पर्याप्त अवसर और स्पेस देख सकते हैं।

भारतीय ग्रामीण व्यवस्था और विकास पर पंचायती राज के नकारात्मक प्रभाव, जल स्रोत और संसाधनों को लेकर उनकी चिंता को उनके अन्य शोध और अध्ययन से जोड़कर समझा जाना चाहिए। धर्म और पुरुषार्थ संबंधी विद्यापति की सोच के जनपक्षीय स्वरूप पर उनका चिंतन और मंथन भी आखिरकार लोक-संसार से जुड़ा विमर्श है जिसमें लोकभाषा का जनपक्ष और धर्म का निजी स्वरूप ही भारतीय संदर्भ में पुरुष की व्याख्या को संदर्भित करता है।

आखिरकार, ए.एम. शाह के समाजशास्त्रीय इतिहास लेख (1974) के बाद प्रो. झा ने 2015 में समाजशास्त्रीय इतिहास की पुनर्पाठ की ज़रूरत समझी तो निश्चित तौर पर उनकी विवेचना इस स्थापना की ओर बढ़ रही थी, जिसमें समाजशास्त्र और समाज को ऐतिहासिक समझ के बिना देखना अधूरा प्रयास माना जाएगा। इसे उनकी एक प्रमुख देन कहा जा सकता है।

ठोस अवलोकन के आधार पर अपनी विशिष्ट राय रखनेवाले इतिहासकार राधाकुमुद मुखर्जी के इस समाजशास्त्री शिष्य का नहीं रहना समाजशास्त्र के लिए एक अपूरणीय क्षति है।

सविता झा खान

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

ईमेल: savita.khan@gmail.com